

सरकारी अनुदान न पाने वाले निजी स्कूलों में समावेश: क्या आर.टी.ई.ने राह दिखाई है?

अर्चना मेहेंदले एवं राहुल मुखोपाध्याय



बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम (द राइट ऑफ चिल्ड्रन टु फ्री एण्ड कम्पलसरी एजुकेशन एक्ट–जिसे आगे आर.टी.ई. एक्ट कहेंगे), 2009 की शिक्षाशास्त्रियों, नीति निर्माताओं, नागरिक समाज कार्यकर्ताओं, निजी तथा सरकारी स्कूल व्यवस्था के संस्थानिक प्रतिनिधियों तथा पालक समूहों के द्वारा सराहना तथा आलोचना, दोनों की गई हैं। हालाँकि उसे जारी हुए अभी बहुत ही कम समय हुआ है। इस अधिनियम की धारा 12 (1) (सी) के अन्तर्गत हाशिए पर रह रहे वर्गों के वंचित बच्चों का समावेश करने के लिए निजी स्कूलों में कुल स्थानों पर '25 प्रतिशत आरक्षण के प्रावधान' ने सार्वजनिक बहस छेड़ी है। इस बहस ने संचार माध्यमों का ध्यान खींचा है और इसके परिणामस्वरूप समाज के विभिन्न वर्गों के मतों में तीखा विरोध पैदा हो गया है। निजी स्कूलों (जिन्हें बेहतर 'गुणवत्ता वाली शिक्षा' प्रदान करने वाले स्कूलों की तरह देखा जाता है) में वंचित बच्चों के समावेश को सुनिश्चित करने के इस प्रावधान का शासकीय स्तर पर बचाव किया गया है। तर्क यह है कि निजी स्कूलों को भी सभी के लिए शिक्षा सुलभ कराने के राष्ट्रीय लक्ष्य में अपना योगदान देना जरूरी है। निजी स्कूलों ने, विशेष रूप से, इस प्रावधान को अदालतों में चुनौती दी है। अप्रैल 2012 में, सर्वोच्च न्यायालय ने *सोसाइटी फॉर अनएडेड स्कूल्स ऑफ राजस्थान बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया*[1] मुकदमे में दिए गए अपने फैसले में अधिनियम की वैधता को सही ठहराया और निजी स्कूलों, गैर–सरकारी सहायता प्राप्त तथा गैर–अल्पसंख्यक वर्ग के स्कूलों, दोनों को इस प्रावधान को लागू करने का निर्देश दिया। उसके बाद, मार्च 2014 में, सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने निर्णय दिया किया कि आर.टी.ई.एक्ट अल्पसंख्यक वर्ग के स्कूलों पर लागू नहीं होगा।[2] इस प्रकार, निजी स्कूलों के लिए उनकी कक्षा 1 तथा पूर्व–प्राथमिक कक्षाओं में 25 प्रतिशत स्थान वंचित बच्चों के लिए सुनिश्चित कर उन्हें निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान अल्पसंख्यक वर्ग की संस्थाओं पर लागू नहीं होता।

सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के कुछ ही समय बाद कर्नाटक ने आर.टी.ई.एक्ट के अन्तर्गत अपने नियमों को अधिसूचित किया और वह इस प्रावधान को लागू करने वाला भी देश का पहला राज्य बन गया। परन्तु, इन दो बातों के बारे में किसी व्यवस्थित शोध का अभाव था : एक तो यह कि 25 प्रतिशत का यह प्रावधान किस प्रकार सरकार, निजी स्कूलों तथा उससे सीधे लाभान्वित होने वाले लोगों, अर्थात बच्चे और उनके परिवार, के बीच में कार्यान्वित हो रहा था, और दूसरे इसके लागू करने में प्रमुख समस्याएँ क्या थीं। इसलिए, हमने 2012–13 के शैक्षणिक सत्र के दौरान, बेंगलूरु तथा दिल्ली में, दोनों जगह की सम्बन्धित सरकारों द्वारा इस प्रावधान को लागू करने के लिए निर्धारित मानदण्डों और प्रक्रियाओं, तथा इस प्रावधान के माध्यम से स्कूलों में ऐसे बच्चों के समावेश को सुगम बनाने की प्रक्रिया में संलग्न प्रमुख भागीदारों के अनुभवों, इन दो पहलुओं को समझने के लिए खोजबीन करने वाला एक छोटा अध्ययन[3] करने का निर्णय लिया। इस अध्ययन के लिए जानकारी मुख्य रूप से स्कूल तथा कक्षा के स्तर पर विशेष रूप से तैयार प्रश्नावलियों तथा निरीक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से, और प्रधान अध्यापकों, अध्यापकों, पालकों, शिक्षा अधिकारियों, निगरानी संस्थाओं

[1] *See, (2012) 6 SCC1*

[2] *Pramati Educational and Cultural Trust & Ors versus Union of India & Ors (Writ Petition (C) No 416 of 2012).*

[3] *This study was done by the Tata Institute of Social Sciences with the Azim Premji University and the Centre for Social Equity and Inclusion with support from Oxfam. For full report, see: http://www.oxfamindia.org/sites/default/files/wp-inclusion-of-marginalised-children-in-private-unaided-schools-190314-en.pdf*

तथा नागरिक समाज के कार्यकर्ताओं से लिए गए अनौपचारिक साक्षात्कारों के माध्यम से इकट्ठी की गई। इस लेख में हम प्रमुख रूप से बेंगलूरु से प्राप्त हुई अपनी प्रमुख जानकारियों पर ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं।

कार्यपद्धतियाँ

जानकारी तक पहुँच: कर्नाटक देश के उन थोड़े से राज्यों में से है जहाँ परिपत्र और सूचनाएँ वैबसाइट पर डाल दिए जाते हैं ताकि लोगों की उन तक आसानी से पहुँच हो सके। यहाँ स्कूलों में उपलब्ध स्थानों के कोटे के बारे में जानकारी एक मानचित्र के रूप में न होकर सिर्फ एक सूची के रूप में उपलब्ध थी, जिसके कारण लोगों को उनके आसपास के इलाके के किसी स्कूल को पहचानना व्यवहारिक रूप से सम्भव नहीं था। हालाँकि आर.टी.ई. शिकायतों के लिए एक टोल–फ्री हैल्पलाइन (1800-425-11004) बनाई गई थी, परन्तु देखा गया कि वैबसाइट पर ऐसी कोई जानकारी प्रदर्शित नहीं की गई थी।

पात्रता की कसौटियाँ: 'कमजोर वर्गों' के लिए निर्धारित 3.5 लाख रु. की वार्षिक आय सीमा को जरूरत से ज्यादा मानते हुए उच्च न्यायालय में याचिकाकर्ता के. नागेश तथा गरीबी रेखा से नीचे के दो परिवारों के विद्यार्थियों द्वारा चुनौती दी गई। तब एक सरकारी आदेश जारी किया गया कि प्राथमिकता उन्हें दी जाएगी जिनकी वार्षिक आय 1 लाख रु. से कम है। पर, इससे कमजोर वर्गों में बहुत भरोसा नहीं जागा क्योंकि उन्हें यह डर था कि अच्छी स्थिति वाले परिवार इसके लाभ हथिया लेंगे, और इसके परिणामस्वरूप आर्थिक रूप से सबसे अधिक पात्रता रखने वाले बच्चों का किस हद तक समावेश होगा इसके बारे में उन्हें बहुत सन्देह था। वंचित बच्चों का वर्गीकरण उनके द्वारा सामना किए जाने वाली अनेक प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों की समस्या का समाधान नहीं करता। वर्तमान कार्यपद्धतियों में कई प्रतिकूल परिस्थितियों वाले बच्चों को परिभाषित करने, उन्हें चुनने और प्राथमिकता देने के बारे में भी प्रावधानों का अभाव है। हालाँकि कारगर ढंग से सही बच्चों तक लाभ पहुँचाने की दृष्टि से प्रवेश के लिए पात्रता प्रमाणीकरण की पूर्व शर्त रखी गई है, परन्तु यह वंचित बच्चों के वर्ग के अन्तर्गत आने वाले उन विशेष उप–समूहों (जैसे कि अनाथ, प्रवासी और सड़कों पर रहने वाले बच्चों) की वास्तविकताओं को नजरअन्दाज कर देता है जो ऐसा प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सकते। इसके फलस्वरूप, ऐसे उप–समूहों में आने वाले बच्चे इस प्रावधान का लाभ उठाते हुए नहीं पाए गए। सरकारी रिकार्डों में इन उप–समूहों के बच्चों के प्रवेश के बारे में कोई उल्लेख नहीं है।

नियंत्रण सम्बन्धी खामियाँ भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने वाले सरल रास्ते उपलब्ध करा देती हैं, जिसके परिणामस्वरूप वंचित आबादियों को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से किए जाने वाले अधिकांश सरकारी प्रयासों के फायदों पर 'सम्भ्रान्त वर्ग द्वारा कब्जा' कर लिया जाता है, वास्तव में यह ऐसी योजनाओं का आम लक्षण बन जाता है। कर्नाटक प्राइवेट स्कूल्स ज्वाइंट एक्शन कमेटी ने आरोप लगाया है कि, इस प्रावधान के लागू किए जाने की इस छोटी–सी अवधि में ही, स्कूलों में प्रस्तुत किए 40 प्रतिशत आय प्रमाणपत्र झूठे हैं, जबकि कर्नाटक लोकायुक्त ने जाली आय प्रमाणपत्र के गोरखधन्धे की जाँच का आदेश दिया है।

पास–पड़ोस: निजी स्कूलों में प्रवेश के लिए आवेदन देने वाले सामान्य वर्ग के बच्चों के लिए पास–पड़ोस (नेबरहुड) की परिभाषा के बारे में मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा जारी किए गए मार्गदर्शक नियम लचीले हैं। परन्तु, जो बच्चे 25 प्रतिशत स्थानों के प्रावधान के अन्तर्गत प्रवेश प्राप्त करने के इच्छुक हैं, उनके लिए स्कूल की दूरी की कसौटी कठोरता पूर्वक निर्धारित की गई है। ऐसे निजी स्कूलों के मामले में जो या तो अति संपन्न सामाजिक–भौगोलिक इलाकों में स्थित हैं, या जो कम आबादी वाली उप–नगरीय परिधि के इलाकों में स्थित हैं, उनके आसपास नाममात्र को ही वंचित तबकों की कोई रिहायशी बस्ती होती है, इसलिए इस नियम का फायदा उठाते हुए ऐसे स्कूल 25 प्रतिशत के प्रावधान का पालन करने से बच जाते हैं और शुद्ध रूप से संभ्रान्त बने रहते हैं।

स्कूलों की रिपोर्टें: इस प्रावधान को लागू करने में स्कूलों की जवाबदेही की निगरानी उनके द्वारा सरकार को भेजी जाने वाली अर्ध–वार्षिक अनुपालन रिपोर्टों के माध्यम से की जाती है। परन्तु, इस रिपोर्ट के लिए निर्धारित प्रपत्र (फॉर्म 3) खुद ही भेदभाव पूर्ण है। अन्य चीजों के साथ, इसमें स्कूल में बच्चों के प्रदर्शन (जिसे उनके द्वारा प्राप्त किए गए ए से सी तक के ग्रेड के रूप में देना होता है), खराब ग्रेड प्राप्त करने वाले बच्चों के लिए विशेष प्रशिक्षण के प्रावधान, रोके गए बच्चों की संख्या और रोके जाने का आधार–कारण, और पालकों से की जाने वाली कोई गम्भीर शिकायतें जो 'बच्चों की स्कूली पढ़ाई की आदतों' के बारे में स्कूल को हो सकती हैं, इन सबकी जानकारी

देना आवश्यक होता है। लेकिन, इन बच्चों का समावेश करने में स्कूलों के प्रदर्शन के बारे में, अनुपालन रिपोर्ट के हिस्से की तरह, इसमें पालकों को प्रतिक्रिया देने का कोई अवसर नहीं दिया जाता। अनुपालन के इन विवरणों पर गम्भीर रूप से पुनर्विचार किए जाने की जरूरत है, खासकर यह देखते हुए कि वे ही (वित्तीय रिपोर्टों और लेखा–परीक्षणों के अलावा) स्कूलों की जवाबदेही सुनिश्चित करने के प्रमुख उपकरण हैं।

अत्यधिक शुल्कों और उनकी प्रतिपूर्ति का प्रश्नः ऐसी भेदभाव पूर्ण स्थितियों को और कठिन बनाने वाली समस्याएँ परिवहन सम्बन्धी किसी ऐसे उपाय के न होने से खड़ी होती हैं जो निजी स्कूलों द्वारा प्रति बच्चे को लाने, ले जाने पर वास्तव में किए जाने वाले वार्षिक खर्च का पता लगा सके, और इस तरह सरकार द्वारा प्रतिपूर्ति के रूप में दी जाने वाली राशि और स्कूल की प्रति बच्चे पर आने वाली वास्तविक लागत के अन्तर की जाँच की जा सके। इनमें से कई स्कूलों की रिपोर्टों में निःशुल्क स्थानों पर दाखिल किए गए विद्यार्थियों से लिखने की सामग्री (स्टेशनरी), खेलकूद, यूनिफॉर्म, रख–रखाव तथा प्रशासनिक कार्यों के लिए शुल्क वसूले जाने का उल्लेख किया गया, हालाँकि नियमों के अनुसार यह निर्धारित किया गया है कि इन लागतों को स्कूलों को वहन करना है। इसी प्रकार, पालकों ने दावा किया कि उन्हें यूनिफॉर्म खरीदने, ट्यूशन, किताबों तथा पाठ्यपुस्तकों के लिए 300 रु. से लेकर 15,000 रु. तक प्रति वर्ष खर्च करना पड़ा। अनेक पालकों ने यहाँ तक कहा कि स्कूलों द्वारा उनसे 50 प्रतिशत शुल्कों को चुकाने के लिए कहा गया और बताया गया कि शेष का भुगतान सरकार द्वारा किया जाएगा। कुछ स्कूलों ने तो पालकों को यह आश्वासन देते हुए उनसे शुल्कों का अग्रिम भुगतान करवाया कि उनके द्वारा चुकाए गए शुल्क को सरकार द्वारा की जाने वाली प्रतिपूर्ति के आधार पर उन्हें लौटा दिया जाएगा। निजी स्कूलों के प्रबन्धकों ने दावा किया कि उन्हें स्कूल शुल्कों की प्रतिपूर्ति की पहली किश्त में अपेक्षित राशि से बहुत कम राशि प्राप्त हुई, जो स्कूलों के द्वारा प्रति बच्चे पर किए जाने वाले खर्च का ब्यौरा देने और उसकी जाँच करने की किसी पारदर्शी प्रक्रिया के न होने, और ऐसे ब्यौरों का सरकारी अधिकारियों द्वारा स्वतंत्र लेखा–परीक्षण न किए जाने का सम्भावित परिणाम है।

सरकार ने स्वयं स्वीकार किया है कि पूर्व–प्राथमिक शिक्षा के लिए दी जाने वाली राशि को मनमाने तौर पर निर्धारित किया गया था। यह आँकड़ा कक्षा 1 के लिए निर्धारित राशि को आधा करके निकाला गया था। इसका कारण यह तथ्य भी था कि सरकार के शिक्षा विभाग के द्वारा किन्हीं भी पूर्व–स्कूलों को संचालित न किए जाने की वजह से उसके पास ऐसा कोई आँकड़ा उपलब्ध नहीं था जिसे प्रतिपूर्ति की राशि के निर्धारण का आधार माना जा सकता था।

क्या स्कूल समावेशी बन रहे हैं?

समाज के विभिन्न वर्गों के बच्चों के दाखिलेः शैक्षिक सत्र 2012–13 तथा 2013–14 में 25 प्रतिशत के प्रावधान के अन्तर्गत हुए दाखिलों के सांख्यिकीय आँकड़ों के पुनरीक्षण में पाया गया कि सामाजिक वर्गों की दृष्टि से, प्रवेश पाने वालों में सबसे अधिक अनुपात अन्य पिछड़ी जातियों के बच्चों (58, 69) का था, जिसके बाद अनुसूचित जातियों के बच्चों (39, 28) का और अन्त में अनुसूचित जनजातियों के बच्चों (3, 3) का था। इन दो शैक्षिक वर्षों में, ऐसे स्कूल जिनमें अनुसूचित जातियों के कोई बच्चे नहीं थे क्रमशः 31 तथा 25 प्रतिशत थे। इसी प्रकार जिन स्कूलों में अनुसूचित जनजातियों से कोई नामांकन नहीं थे उनका प्रतिशत क्रमशः 86 तथा 77 था, और अन्य पिछड़ी जातियों से नामांकन न होने वाले स्कूल क्रमशः 24 तथा 7 प्रतिशत थे।[4]

सामाजिक दूरीः यह सही है कि अध्ययन के अन्तर्गत शामिल किए गए स्कूलों में निरीक्षणों और प्रधान अध्यापकों तथा अध्यापकों से हुई बातचीत में भेदभाव सम्बन्धी कोई तात्कालिक चिन्ताएँ उजागर नहीं हुईं। परन्तु, इसका कारण निचली कक्षाओं में बच्चों के बीच में सहज सामाजिक समायोजन होना तथा उनकी छोटी आयु के कारण उन्हें सामाजिक अन्तरों की जाहिर तौर पर पहचान न होना बताया गया। कई शिक्षकों ने तुरन्त इस बात की ओर ध्यान खींचा कि 25 प्रतिशत के प्रावधान के तहत भर्ती किए गए बच्चे अपने को स्कूल के दूसरे बच्चों से 'अलग महसूस' न करें, यह सुनिश्चित करने के लिए उनके माता–पिताओं को बहुत खर्चे और सामग्री जुटाने के भारी प्रयास करना पड़ते थे। इसी के साथ, इन शिक्षकों ने यह आशंका भी जताई कि किस प्रकार 'सामंजस्य' की समस्याएँ तब सामने आएँगी जब ये बच्चे ऊँची कक्षाओं में

[4] *Based on data shared by RTE Cell, Department of Education, Government of Karnataka.*

जाएँगे और अपने एकदम आसपास के सहपाठी–समूह के साथ क्रियाकलापों में सामाजिक अन्तरों को पहचानने लगेंगे। निजी स्कूलों के प्रमुख अध्यापकों द्वारा पूर्वाभास की तरह आमतौर पर दोहराई जाने वाली एक चिन्ता उन परिवारों के आगे चलकर होने वाले अपमान और आत्म–सम्मान को पहुँचने वाली क्षति को लेकर थी जिनके बच्चों को 25 प्रतिशत के प्रावधान के अन्तर्गत एक कथित रूप से सर्वथा भिन्न स्कूली परिवेशों में प्रवेश दिलवाया जा रहा था। उदाहरण के लिए, बेंगलूरु के एक निजी स्कूल, जो शहर की संपन्न आबादी के बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के लिए जाना जाता है, के प्रधान अध्यापक ने कहा कि, 'मान लीजिए कि स्कूल में एक तरण ताल (स्विमिंग पूल) और कैंटीन आदि, की सुविधा है और सब चीजों का पैसा लगता है, तो ऐसे बच्चे की मानसिक स्थिति तब क्या होगी जब वह अपने सहपाठियों को उन सब सुविधाओं का उपयोग करते हुए देखेगा?' प्रबन्धकों में से अधिकांश उत्तरदाताओं ने ऐसे विद्यार्थियों की इन परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता के बारे में चिन्ताएँ व्यक्त कीं, और उनके उत्तरों में सामाजिक दूरी तथा ऐसे बच्चों के प्रति दया और एहसान का भाव बहुत स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ (बॉक्स 1 देखें)।

समरूप कक्षाएँ: यह सुनिश्चित करने के लिए कि कक्षाएँ समरूप बनी रहें, कुछ स्कूलों ने ऐसे विद्यार्थियों को, जो पहले ही चुने जा चुके थे और प्रवेश पा चुके थे, आर.टी.ई. के अन्तर्गत 'छात्रवृत्ति' के लिए 'आवेदन देने' को प्रोत्साहित किया था। ऐसे बच्चों के पालकों को परामर्श दिया गया और उनसे पात्रता तथा दाखिले की आवश्यकताओं को 'पूरा करने' का निवेदन किया गया।

बाक्स 1: स्कूल प्रबन्धकों में से कुछ उत्तरदाताओं ने जो कहा:

'मैं ठीक से नहीं जानता कि यह कितना उपयोगी है। हमारे यहाँ पाठ्यक्रम के अतिरिक्त स्कूल में चलने वाली बहुत सी गतिविधियाँ हैं, जैसे कि ताइक्वांडो तथा अन्य खेलकूद। हमारे स्कूल के कई बच्चे ऐसी गतिविधियों को बहुत गम्भीर रूप से अपनाने का इरादा रखते हैं। आर.टी.ई. वाले बच्चे ऐसी गतिविधियों का क्या करेंगे? क्या आप सोचते हैं कि वे इन्हें आगे जारी रखेंगे? मेरे बच्चे ताइक्वांडो में स्कूल का प्रतिनिधित्व करते हैं और उसकी राष्ट्रीय स्तर की परीक्षाएँ भी देते हैं – क्या आर.टी.ई. वाले बच्चे उसे इतनी गम्भीरता से लेंगे?'

'मैं नहीं सोचता कि यह हमारे लिए उपयोगी है। मुझे नहीं लगता कि हमें उनसे कोई लाभ हो सकता है। हो सकता है कि उन्हें हमसे कुछ लाभ हो। हालाँकि मुझे निश्चित तौर पर ऐसा नहीं लगता'।

'आर.टी.ई. अच्छा है, कम से कम वे बच्चे कुछ सीख तो सकेंगे, अन्यथा पहले तो वे जानवरों की तरह बड़े हो रहे थे।'

'इन बच्चों को सुधारना कठिन है क्योंकि वे कुछ नहीं जानते और वे गंदे होते हैं।'

ऐसे स्कूलों ने ठीक उतने ही आवेदन प्राप्त होने की घोषणा की जितने स्थान स्कूल में उपलब्ध थे और इस तरह उन्होंने पहले ही दिए जा चुके दाखिलों पर यथास्थिति बरकरार रखी। चूँकि हमने इस प्रावधान के पहले वर्ष में उसके लागू किए जाने का अध्ययन किया, इसलिए कुछ स्कूलों ने स्वीकार किया कि उन्हें ऐसी तरकीबें अपनाना पड़ीं क्योंकि उनके पास कोई आवेदन ही नहीं थे और वे अपने दायित्वों को पूरा करने में चूकना नहीं चाहते थे।

समावेश के उपाय: हमारे अध्ययन ने यह भी दिखाया कि 'समावेश' को 'दूसरे बच्चों' को स्कूल में समेकित करने की 'समस्या' के रूप में, और आर.टी.ई. को 'गरीब बच्चों को निजी स्कूलों में पढ़ने, जो कि उनकी आर्थिक क्षमता के बाहर था, के लिए मदद करने' के प्रयास की तरह देखा गया। पर सामाजिक भिन्नताओं वाली विद्यार्थी आबादी की अन्तर्निहित क्षमता को ध्यान में रखते हुए उच्च–वर्गीय निजी स्कूलों में से किसी के लिए भी, उनकी मौजूदा समरूपी शिक्षा के दृष्टिकोण को बदलने की सम्भावना को व्यक्त नहीं किया गया। इसलिए अचरज की बात नहीं कि सर्वेक्षण किए गए स्कूलों में से बहुत थोड़े ही ऐसे थे जिन्होंने इन बच्चों के समावेश को सुगम बनाने के लिए कोई विशेष उपाय किए थे। ये उपाय भी परिपूर्ण और प्रभावशाली होने के बजाय न्यूनतम तथा सांकेतिक थे। इन उपायों में से कुछ इस प्रकार थे : 25 प्रतिशत के प्रावधान के तहत जिन बच्चों का नामांकन हुआ हो उनकी पहचान को गोपनीय रखना, इन बच्चों के लिए स्कूल के समय के बाद अतिरिक्त सहायता कक्षाएँ लगाना, तथा इन बच्चों के पालकों के साथ पोषण पर कार्यशालाएँ आयोजित करना। परन्तु, शिक्षकों में से कोई भी आर.टी.ई. के अन्तर्गत सम्बन्धित प्रावधानों से परिचित नहीं थे। न ही उन्हें कक्षा में विविध पृष्ठभूमि वाले बच्चों को सम्भालने के लिए सरकार के द्वारा या स्कूल प्रबन्धन के द्वारा प्रशिक्षण या

उन्मुखीकरण के रूप में कोई विशेष सहायता दी गई थी। यहाँ तक कि जो पालक इस प्रावधान के तहत अपने बच्चों को इन स्कूलों में दाखिला दिलवाने में सफल रहे थे, वे भी अपने हकों के बारे में अनभिज्ञ थे। स्कूलों ने अपनी रिपोर्टों में उल्लेख किया कि पालक शिक्षक संघ (पेरेंट्स टीचर्स एसोसिएशन्स) में माता–पिता बहुत ही कम भाग लेते थे।

निगरानी: इस सन्दर्भ में संचार माध्यमों में प्रचार और नागरिक समाज के संगठनों के द्वारा जागरूकता कार्यक्रम चलाए गए हैं। इसके फलस्वरूप कुछ पालकों ने बाल अधिकारों की सुरक्षा के लिए बने कर्नाटक राज्य आयोग में निजी स्कूलों द्वारा दाखिले के फार्म न दिए जाने और अतिरिक्त शुल्क वसूले जाने की शिकायतें दर्ज कराईं। आयोग ने इन मामलों में कार्यवाही करते हुए उन्हें या तो शिक्षा विभाग को सौंपा या सार्वजनिक सुनवाई की पद्धति के माध्यम से सिफारिशें कीं। परन्तु, आयोग ने समावेश की प्रक्रिया को सशक्त बनाने के लिए सरकार से कोई व्यापक नीतिगत सिफारिशें नहीं की हैं।

निष्कर्ष

आर.टी.ई. एक्ट और उसका 25 प्रतिशत वाला प्रावधान अभी अपने प्रारम्भिक चरणों में है। कानून बनाने वालों ने समावेश के जिस बड़े लक्ष्य को हासिल करने के उद्देश्य से उसे पारित किया था, वह अभी भी दूर बना हुआ है, क्योंकि अफसरशाही फिलहाल निजी स्कूलों के प्रतिवादों का निराकरण करने की कोशिश कर रही है, ताकि पहले यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे अपने दरवाजे खोलें और ऐसे बच्चों को प्रवेश प्रदान करें। हालाँकि, दाखिले पहला कदम हो सकते हैं, परन्तु उन्हें परिपूर्ण समावेश नहीं समझा जा सकता जिसके लिए उस तरीके में मूलभूत परिवर्तन होना जरूरी है जिस तरह स्कूलों का ढाँचा बना हुआ है और जिस तरह उनमें पढ़ाई होती है। राज्य सरकार को इस प्रावधान को लागू करने की अपनी व्यवस्थाओं को सरल और मजबूत बनाने, उन तक पहुँच को ज्यादा सुगम तथा पारदर्शी बनाने और हर स्तर पर उनकी सामाजिक निगरानी किए जाने की जरूरत है।

अर्चना मेहेंदले टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, मुम्बई के स्कूल ऑफ एजुकेशन में विजिटिंग फैकल्टी हैं। वे बाल अधिकारों, शिक्षा और अक्षमताओं के क्षेत्र में काम करती हैं। उनसे archana.mehendale@tiss.edu पर सम्पर्क किया जा सकता है।

राहुल मुखोपाध्याय अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु में फैकल्टी के सदस्य हैं। उनकी शोध की रुचियाँ शिक्षा के समाजशास्त्र, शिक्षा नीति तथा संगठनों के समाजशास्त्र के क्षेत्र में हैं उनसे rahul.mukhopadhyay@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद**: भरत त्रिपाठी